[Harmalkar *, Vol.7 (Iss.11SE): November 2019]
चित्रकला और उसके अंतः अनुशासनिक सम्बन्ध
Painting and Its Interdisciplinary Relation
ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v7.i11.2019.3752

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH – GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository

Arts

नृत्य में मूर्तिकला व चित्रकला के तत्वों का सौन्दर्य

डॉ. सुचित्रा हरमलकर [1]

[1] नृत्य, शा. म.ल.बा. कन्या स्ना. महाविद्यालय, किला भवन, इन्दौर (म.प्र.)

शोध-सारांश

भारतीय नृत्यकला भारतीय कलाओं की सहधार्मिता तथा अन्योन्याश्रित सम्बन्धों का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं

मुख्य शब्द – मूर्तिकला, सौन्दर्य, नृत्य

Cite This Article: डॉ. सुचित्रा हरमलकर. (2019). "नृत्य में मूर्तिकला व चित्रकला के तत्वों का सौन्दर्य." *International Journal of Research - Granthaalayah*, 7(11SE), 274-276. https://doi.org/10.5281/zenodo.3592648.

नृत्यकला के साथ शिल्प व चित्रकला के तुलनात्मक अध्ययन में स्पष्ट हो जाता है कि इन कलाओं के कतिपय पक्ष भारतीय नृत्यकला की तकनीक के आवश्यक अंग है तथा इसमें इन सभी कलाओं (प्रमुख रूप से ललित कलाओं) के मुख्य गुण समाहित है।

नाट्यशास्त्र आदि ग्रन्थों में जो प्रमाण उपलब्ध है उससे यह स्पष्ट होता है कि ईस्वी सन् के प्रारम्भ से ही मूर्तिकला, चित्रकला, काव्य, नाट्य नृत्य संगीत आदि को मात्र शिल्प कौशल या छन्द से बनी रचनाओं की अपेक्षा श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा था, चूंकि इन कलाओं से प्रक्षेपित होने वाला भाव अधिक सुखद एवं हृदय को आनंद देने वाला था तथा जिसकी अनुभूति अधिक अर्थपूर्ण भी थी इसीलिए इन कलाओं को श्रेष्ठतम का दर्जा दिया गया और इन्हें ललित कलाएं कहा गया।

"ललित कलाओं में तत्व का निरूपण तथा आस्वादन दोनों ही पक्ष सूक्ष्म संवेदनशीलता की अपेक्षा रखते है। इनकी अनुभूति और अभिव्यक्ति का माध्यम मानव की सूक्ष्म इन्द्रियां है जिनके द्वारा आनन्द प्राप्त किया जाता है।"[1]

किसी भी कला के सृजन के तीन स्तर होते हैं - अनुभूति, अभिव्यक्ति और आस्वादन।

मूर्तिकला, चित्रकला में जब रंगों और रेखाओं का उचित संयोजन, संगीत में स्वर तथा लय का कौशलपूर्ण समन्वय, तथा नृत्य में लय गति एवं अंग और भाव का समुचित विधान सौन्दर्यपूर्ण ढंग से किया जावे तो एक पाषाण सुन्दर कलाकृति का रूप ले लेता है। शब्द अर्थपूर्ण काव्य में ढल जाते हैं और अंगविक्षेप मनमोहक नृत्य का रूप लेकर सामने आ खड़े होते हैं।

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3592648

नृत्यकला के स्वरूप को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि यह द्विाल्प नाट्य संगीत एवं साहित्य सभी के तत्वों का एक सुन्दर समन्वय है। नाट्यशास्त्र में मानव के सिर से लेकर एड़ी तक के प्रत्येक अंग प्रत्यंग का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। प्रत्येक अंग की परिचालना का अपना नियम और अर्थ है। नर्त्तक के चेहरे की भाव भंगिमा, भू विक्षेप, ग्रीवा का संचालन, कटि का तिर्थक, पाशर्व का वक्र, वक्ष का उठाव, हाथ पैरों की विभिनन चेष्टाएं ये सभी किसी भी विषय के गहन व गूढ़ अर्थ की अभिव्यक्ति और रससृष्टि में सहायक है।

भारतवर्ष में स्थित विभिन्न मंदिरों की भित्तियों पर अकीर्णित नृत्य करती हुयी मूर्तियां तथा विभिन्न अंचलो में स्थित कलामण्डपो में प्राप्त अनेकों नृत मूर्तियां इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि मूर्तिकला, चत्रकला और नृत्यकला शताद्वियों से एक दूसरे पर आश्रित है। मूर्तिकला व चित्रकला में नृत्य की मुद्राओं और गतियों का विशिष्ट स्थान रहा है। नृत्य के अभिनय पक्ष की अभिव्यक्ति में प्रयुक्त हस्तमुद्राएं, आंगिक चेष्टाएं, मुखज भाव के समान ही प्रतिमा विज्ञान में भी मूर्तियों के भाव तथा स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए उन्हीं प्रतीकों का सहारा लिया जाता है, जो नृत्यकला में सामान्य रूप से प्रयुक्त होते हैं। इसीलिए प्राचीन मंदिरो पर उकेरी गयी मूर्त्तियां जहां एक ओर नृत्यरत नर्तकी का स्मरण कराती है वहीं दूसरी ओर नृत्य करती नर्तकी की भाव-भंगिमाओं को देखकर सह्दय दर्शक की स्मृति में मूर्त्यांकित व चित्रित यक्षिणिओं, नायिकाओं आदि का भी सहज स्मरण हो जाता है। किसी भी कला का सौन्दर्य बोध सभी कलाओं के तत्व के लिए होता है। यही कारण है कि कलाकार अपनी रचनात्मक कल्पना के समय कई अन्तर्द्वन्दों से गुजरता हुआ कभी-कभी किसी अन्य कला की रसधारा में मुक्ति पा जाता है। यही वजह है कि ललित कलाओं में अन्तर्सम्बन्ध है।"[2]

नृतय देह की कला है। भाव-अभिव्यक्ति के लिए अंग-प्रत्यंग एक उपकरण की भांति काम करते हैं, ठीक इसी प्रकार जिस तरह एक मूर्त्तिकार एवं चित्रकार पत्थर, कागज, रंग आदि को अपने उपकरण की भांति प्रयोग करता है। किन्तु इनमें भावाभिव्यक्ति के लिए ये दोनों ही शरीर पर निर्भर है। नृत्य करती देह जब गति से स्थिति में आती है त बवह मूर्तिवत और चित्रवत हो जाती है। रंगमंच रूपी कैनवास पर थिरकती (नृत्यरत) देह मुद्राओं, प्रतीकों, भावों के माध्यम से अगगिनत चित्रों का संसार रचती जाती है साथ ही स्थिति के क्षणों में सुन्दर मूर्त्ति को प्रत्यक्ष देखने की अनुभूति भी करवा देती है।

भरत नाट्यशास्त्र में भरत ने चारों अभिनय भेदों के अतिरिक्त एक अन्य अभिनय भेद का उल्लेख 'चित्राभिनय' के नाम से किया है जो सामान्य अभिनय से सर्वथा अलग है।

"प्रकृति एवं लोकजीवन पर आश्रित चित्राभिनय में कल्पना और अनुभूतिशीलता का मर्मस्पस्पर्शी सामंजस्य रहता है। रंगमण्डप पर उसे प्रस्तुत करते हुए उसमें चित्र के समान साक्षात्कार सा आनन्द आता है।"[3]

एक नर्तक, मूर्त्तिकार, चित्रकार तीनों ही शरीर को क्रमशः इस प्रकार संचालित, अंकित और चित्रित करते हैं कि शरीर का प्रत्येक अंग, प्रत्यंग, उपांग, भावभंगिमा, वक्र किसी न किसी गूढ़ प्रतीकात्मक भाव की व्यंजना करने में समर्थ होता है। जिस तरह नाट्यशास्त्र में नाट्य नृत्य को ध्यान में रखते हुए शरीर का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है, उसी प्रकार से शिल्पशास्त्रों में भी इस बात को ध्यान में रखते हुए कि शरीर के प्रत्येक अंग में भाव उत्पन्न करने की अद्भुत क्षमता है, शरीर का सूक्ष्म से सूक्ष्म विश्लेषण प्राप्त होता है।

"समस्त कलाएं अभिव्यक्ति से पूर्व एक दूसरे के समीप होती है बाद में किसी विशिष्ट इकाई में घनीभूत हो अपना पृथक अस्तित्व कायम करती है।"[4]

ISSN- 2350-0530(O), ISSN- 2394-3629(P)
Index Copernicus Value (ICV 2018): 86.20
DOI: 10.5281/zenodo.3592648

उदाहरणार्थ जब कोई नृत्यकार ब्रज की होती के प्रसंग को मंच पर प्रस्तुत करता है तो प्रस्तुति के पूर्व वह इसे मन में व्यक्त करता है तद्नुसार दृश्य की कल्पना करता है। यथा कृष्ण का सखाओं के साथ रंग बनाना उसे पिचकारियों में भरकर राधा व सखियों पर डालना, अबीर गुलाल को एक दूसरे के मुख पर मलना, राधा का रूठना, कृष्ण का मनाना, होली के उल्लास में सभी का प्रेमरस में मग्न हो जाना आदि। फिर शब्द मुद्रा भाव रस आहार्य आदि के बारे में सोचकर इनके संयोजन की कल्पना करता है।

प्रस्तुति में प्रयुक्त होने वाली रचना के शब्द क्या होंगे लय ताल व स्वरों की जमावट कैसी होगी किन-किन मुद्राओं का प्रयोग किया जावेगा। नर्तक-नर्तकी द्वारा धारण किए जाने वाले आभूषण क्या होंगे तथा पहनी जाने वाली कास्ट्यूम (पोषाख) का रंग संयोजन कैसा होगा इन सभी का विचार नर्तक करता है। ठीक उसी प्रकार एक चित्रकार अपने चित्र को चित्रित करने तथा मूर्त्तिकार अपने शिल्प को अंकित करने के पूर्व उसे कल्पना में उकेरता है और नृत्यकार की भांति ही रूपभेद प्रमाण योजना तथा ताल भंग व सूत्र मान आदि की योजना अपनी कल्पना में कर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

इससे स्पष्ट है चाहे चित्रकला की रेखाएं या आकृति हो या मूर्तिशिल्प की स्थिर भंगिमाएं सभी का नृत्य के साथ सामंजस्य कई मूलभूत इकाईयों के आधार पर किया जा सकता है। इसीलिए कपिला वात्स्यायन जी ने चित्रकला, मूर्तिकला, नृत्यकला के सम्बन्धों को समानता के अनेक स्तरों पर विशलेषित किया है जैसे कि एक लक्ष्य विषयवस्तु की समानता, तकनीकी साम्य तथा एक दूसरे से ग्रहण करने की क्षमता आदि। इन तीनों कलाओं में मुख्य अन्तर माध्यम की भिन्नता मात्र है।

अतः यह स्पष्ट है कि एक ओर नृत्यकला, शिल्प और चित्रकला का आधार रही है वहीं दूसरी ओर वर्तमान में प्रचलित क्षेत्रगत नृत्यशैलियों के विकास पर उस क्षेत्रविशेष की मूर्तिकला का अत्यन्त गहरा प्रभाव भी देखने को मिलता है जो इन कलाओं के अन्तर्सम्बन्ध को भलीभांति उजागर करता है।

सन्दर्भ

[1] कथक दर्पण - लेखक - तीरथराम आजाद, पृष्ठ 247
[2] अक्षरों की आरसी - लेखक - ज्योति बक्शी, पृष्ठ क्र. 209
[3] भरत और भारतीय नाट्यकला - सुरेन्द्रनाथ दीक्षित